IJAER/May-June 2019/Volume-7/Issue-6 ISSN: 2278-9677

International Journal of Arts & Education Research

बाल साहित्य और बाल रंगमंच

डॉ स्मिता गर्ग

कार्यवाहक प्राचार्य एवं एसोसिएट प्रोफेसर

डिगम्बर पी०जी० कॉलेज

डिबाई

डॉ भारती दीक्षित

एसोसिएट प्रोफेसर

शहीद मंगल पांडे महिला स्नातकोत्तर

महाविद्यालय मेरठ

सार

भारत में नाटक की परम्परा प्राचीन है। संस्कृति वाङ्गमय में नाटकों और नाटककारों की लम्बी परम्परा और निरन्तरता है। भरत मुनि ने अपने नाट्य शास्त्र में इन नाट्य परम्परा को अनुशासित और रूढ़िबद्ध कर दिया है। प्रेक्षक, प्रेक्षागृह, नाटक, बीज बिन्दु पताका, प्रकरी आदि का ऐसा नियमन किया कि नाटक स्वतंत्र नहीं हो पाये। नाटक के क्षेत्र में (प्रसाद) के आगमन के साथ सांस्कृतिक, साहित्यिक नाटकों की महिमामंडित परम्परा की शुरूआत हुई। कविता का समावेश, काव्यमय भाषा, संवादायात्मक काव्य– संरचना स्वागत कथन परम्परागत प्रतिबद्धताओं से विरोध तो था, किन्तु मंचन की असुविधा थी, फिर भी विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों के सभाकक्ष में इन नाटकों का मंचन होता रहा। द्वितीय महायुद्ध से पूर्व भारत में बाल रंगमंच की कोई पुष्टि परम्परा नही थी। बीसवीं सदी के दूसरे दशक से बालकों के अभिनय क्षेत्र में कुछ व्यावसायिक संस्थाओं द्वारा प्रेरणा मिली। बच्चों के लिये स्वतंत्रतापूर्वक लिखे गये नाटकों को मंच पर लाने की प्रथा गत 9–10 दशकों की है। वर्तमान समय के भारत में बाल–रंगमंच और बाल फिल्मों का अभाव है जिसके विकास की आवश्यकता बाल रंगमंच राष्ट्रीय प्रगति का महत्वपूर्ण अंग है। भारत के सभी शहरों, महानगरों, कस्बों में इसकी स्थापना होना आवश्यक है। बाल–रंगमंच को और भी अधिक समृद्ध करने के लिये शिक्षक, अभिभावक, साहित्यकार, निर्देशक, पत्रकार, सम्पादक सभी लोगों को मिलकर प्रयास करने होंगे। पाठ्यक्रम में बाल–रंगमंच के विषय को जोड़ा जाना आवश्यक है।

मुख्य शब्दः *बाल साहित्य*

प्रस्तावना

वर्तमान समय में नाटक और बाल रंगमंच का अभाव सा दिखायी दे रहा है क्योंकि संचार के विभिन्न माध्यमों सिनेमा, दूरदर्शन, इंटरनेट, टेबलेट आदि के आगमन से आधुनिक नाटक और रंगमंच में एक धुंध सी छा गयी है। पर वास्तव में आज के संचार के माध्यमों में सिनेमा को अग्रसर कर पर्दे में उतारने का किसी को श्रेय जाता है तो वह नाटक को। भारत में नाटक की परम्परा प्राचीनकाल से ही है। प्रत्येक नाटक व बाल नाटकों का रंगमंच में मंचन करने का कोई न कोई उद्देश्य अवश्य ही रहा है। वे जनता के अत्यधिक आकर्षण का केन्द बिन्दु रहे हैं। वास्तव में संस्कृत भाषा से छिटककर जो नाटक भारतीय भाषाओं में लिखे गये हैं, उन्हें मंचित करने का उद्देश्य भी रखा गया। बंगला, तमिल, मराठी, हिन्दी में ऐसे अनेक नाटककार हुये जिन्होनें कथ्य, शिल्प, मंचन पात्र आदि को दृष्टि में रखकर

नाटक लिखे। साथ ही शास्त्रीय नाट्क लेखन– परम्परा से हटकर लोक रंगमंच के भीतर से गुजरते हुये भारतीयता की तलाश का काम देश के सभी हिस्सों में इन नाटककारों ने किया है।

भारतेंन्दु हरिश्चन्द्र अव्यावसायिक नाटकों के लेखन और मंचन के जन्मदाता कहे जा सकते हैं। भारतेंन्दु युग के 1857 की क्रांति से उत्पन्न स्थितियों और विसंगतियों से प्रेरित तथा प्रभावित रहा। अंग्रेजों ने अपने विजय अभियान के माध्यम से 1857 के विद्रोह को कठोरता से कुचला तथा बिखरे हुये सामंतो की सत्ता को कायम रखा, उन्हें बढ़ावा दिया। साम्प्रदायिक खाई को और गहरा किया। प्रेस की आजादी को शांत और सीमित किया। इसी युग में विद्रोह का शंखनाद करते हुये भारतेंन्दु ने 1857 में सत्य हरिशचन्द 1876 में भारत दुर्दशा 1881 में अंधेर नगरी जैसे नाटक लिखे और उनका मंचन किया। भारतेन्दु ने जिस राजनैतिक सोच के साथ रंग कर्म की शुरूआत की उसमें ब्रिटिश सत्ता और सामंती व्यवस्था पर आक्रमकता के साथ गहरा कटाक्ष, मूल्यों की विकृति और विसंगतियों तथा निरंकुश भ्रष्टाचारिता पर भी प्रहार था। भारतेन्दु की सादगी पूर्ण प्रस्तुतियाँ लेखन, मंचीय व्यवस्था, बंगला नाटकों –

दीनबंधु मित्र के नीलदर्पण, के प्रदर्शन से प्रेरित जान पड़ती है। इन दोनों नाटककारों ने अपनी मंडलियाँ बनाकर स्थान–स्थान पर मंचीय प्रदर्शन किये। भारतेंन्दु तो स्वयं–कानपुर, आगरा, प्रयाग, पटना, मिर्जापुर जाकर मित्र मण्डली के साथ नाट्य मंचन किया है। 17 वर्षो तक शौकिया रंगमंचों और अव्यावसायिक नाटकों का प्रदर्शन किया। उन्होंने अपने नाटकों के अलावा, शीतला प्रसाद त्रिपाठी के जानकी मंगल में तथा अन्य नाटकों में भी काम किया है। भारतेंन्दु की परम्परा बहुत दिनों तक नही चली। वैसे 19वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में माधव शुक्ल जैसे रंग कर्मी ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया। प्रयाग में ''सीता स्वयंवर'' का मंचन हुआ जिसमें ब्रिटिश हुक्मरानों के खिलाफ साफ–साफ कहने का साहस था। कलकत्ते की हिन्दी नाट्य परिषद ने भी प्रदर्शन किये। साथ ही राधाकृष्णदास के महाराणा प्रताप डी0एल0राय के विश्व प्रेम (मेवाड़ पतन का परिवर्तित नाम) को मंचित किया गया। माधव शुक्ला के क्रांतिकारी लेखन मंचन का प्रभाव यह हुआ कि अंग्रेजों ने छापे मार–मार कर उनकी सम्पत्ति और मण्डलियों के सामान जप्त कर लिये। प्रतिक्रिया स्वरूप अंग्रेज अफसरों ने पारसी कम्पनियों को नाटक लिखने और मंच प्रदान करने का प्रयास किया। 20वीं शताब्दी के प्रांरभिक दशक में पारसी रंगमंच की तड़क–भड़क और लोकप्रियता ने दर्शकों के मन को जकड़ लिया किन्तु उस समय जिस तरह की राजनैतिक, सामाजिक और बौद्धिक चेतना जागृति हो रही थी, या जरूरत थी, उसकी पूर्ति पारसी थियेटर नहीं कर पा रहे थे। शौकिया रंगमंच दम तोड़ रहे थे, ऐसे समय मुम्बई में पृथ्वी थियेटर का उद्घाटन एक बहुत बड़ी घटना और चमत्कार था। उस वक्त मुम्बई में दो तरह के नाटक खेले जाते थे, या देखने को मिलते थे। बड़े थियेटरों में खेले जाने वाले व्यावसायिक नाटक या फिर छवीलदास हाई स्कूल के सभाकक्ष में खेले जाने वाले प्रायोगिक नाटक। लम्बे अर्से से व्यावसायिक नाटकों का अपना ढर्रा बन चुका था, जिसे बदलने और तोड़ने के प्रयास में प्रायोगिक नाटकों की शुरूआत हुई पर होते–होते कुछ प्रायोगिक नाटकों का अपना एक ढर्रा बन गया– इस फार्मूले के प्रयोग छबीलेदास हाई स्कूल के हाल में ही होते थे। पृथ्वी थियेटर के उद्घाटन का पहला नाटक एम0एस0 सथ्यू के निर्देशन में खेला गया ''बकरी नाटक था।

पृथ्वी थियेटर 16 वर्ष तक अपनी कम्पनी लेकर भारत भर में घूमते रहे– पृथ्वीराज कपूर स्वयं अभिनय करते थे। जगह–जगह घूमते। रेलगाड़ी के तीन डिब्बे सिर्फ उनके सामान को ढोने के काम आते। उनके नाटक व्यावसायिक और प्रायोगिक के बीच की कड़ी थे। ज्यादातर उनके नाटक ऐतिहासिक होते थे। बड़े–बड़े पर्दे, सीनरीज, ऐतिहासिक पात्रों और चरित्रों के कपड़े। बम्बई में शो के लिये ओपेरा हाउस में विशाल दृश्यों वाले महान ऐतिहासिक नाटक खेले जाते। 'दीवार' अनारकली– जैसे बड़े सेट वाले नाटक भव्य लगते थे। भारतीय नाटक और रंगमंच में पृथ्वी थियेटर हमेशा याद रखा जायेगा। भारतीय नाटककारों और रंगमंच की अपनी कोई नियमित परम्परा या इतिहास नहीं है। निरंतरता भी नहीं है। 20वीं शताब्दी से अलग–अलग पड़ावों से गुजर कर नाट्य–परम्परा अपनी यात्रा पूरी करती रही। भारतीय नाट्य लेखन और मंचीकरण में हमेशा से व्यावसायिक रंगमंच

और शौकिया अथवा प्रयोगशील रंगमंच की दो समानान्तर धारायें आरम्भ से ही मौजूद रहीं हैं। बंगला, मराठी, तेलगू, उड़िया नाटकों और रंगमंचों की तरह ही हिन्दीं नाटक और रंगमंच में भी यह धारायें बराबर बनी रहीं है।

नाटक के क्षेत्र में (प्रसाद) के आगमन के साथ सांस्कृतिक, साहित्यिक नाटकों की महिमामंडित परम्परा की शुरूआत हुई। कविता का समावेश, काव्यमय भाषा, संवादायात्मक काव्य– सरंचना स्वागत कथन परम्परागत प्रतिबद्धताओं से विरोध तो था, किन्तु मंचन की असुविधा थी, फिर भी विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों के सभाकक्ष में इन नाटकों का मंचन होता रहा। स्कंदगुप्त, ध्रुव स्वामिनी, चन्द्रगुप्त उस समय बड़े लोकप्रिय नाटक हुये। प्रसादयुग के नाटकों की धूम के साथ पारसी नाटकों की तड़क–भड़क तथा मंचन की समाप्ति हो गई। साथ ही फिल्मों के आगमन ने भी अधिकांश रंगकर्मियों को अपनी ओर आकृष्ट किया। उस समय बंगाल में डी0एल0राय के नाटकों की धूम थी। तेलगू नाटक चैजीप्रिया का अनुवाद अलार्मकव् को कारन्थ में मंचित किया। शंभुमित्र ने बंगला में रत्नदीप धुरनी, जयंती, कालिंदी, माटी का घर, श्रीराम नाटक लिखे उनका मंचन चर्चित रहा उस समय के विख्यात नाटकों में सीता छेड़ातार, टूटा हुआ तारा, विशेष रूप से चर्चित हुये। इस बीच नाटककार, पाठक और दर्शक के बीच में निर्देशक का प्रवेश हुआ, और उनकी भूमिका महत्वपूर्ण हो गई। मंचन देखते–देखते वह नहीं रह गया। निर्देशक महत्वपूर्ण होते गये। नाटक के भीतर नाटक पैदा हो गया। डॉ0 कोटा शिवराम कारंत ने विविध प्रयोग किये। नाटकों में भी, मंच में भी, निर्देशन में भी। उन्होंने लगभग 145 नाटक लिखें। कन्नड में नाटकों की जो नई परम्परा, नये प्रयोग हुये उनका प्रभाव हिन्दी, मराठी और बंगला में भी पड़ा। कन्नड़ से मराठी और हिन्दी में अनुवाद हुये। मराठी थे गड़करी, के नाटक एक प्याला का कन्नड़ में अनुवाद हुआ जिसका नाम निशा महिमें, रखा और खूब चर्चित हुआ। मराठी के विजय तेंदुलकर के नाटक 'सखाराय बाइंडर' का अनुवाद बंगला और हिन्दी में हुआ। ये नाटक खूब प्रचलित हुये। श्यामानंद जालान ने हिन्दी और बंगला में इनका मंचीकरण किया। आजादी के बाद लगभग तीन दशक भारतीय कला, नाटक और रंगमंच के स्वर्णिम काल हैं। इस कालावधि में बहुत सारे महत्वपूर्ण निर्देशक और अभिनेताओं ने निहायत उत्तेजक मौलिक और प्रयोगशील रंगकर्म प्रस्तुत किये। इन प्रयोगशील नाटककारों ने नए रंग क्षितिज दिये नाटककार मोहन राकेश बंगला के बादल सरकार, मराठी के विजय तेन्दुलकर और कन्नड़ के गिरीश कर्नाड ने ऐसे प्रयोग किये कि रंगमंच के इतिहास में वे अमर हो गये। नाटक लिखना और उसका मंचीकरण जोखिम का काम है। उन्हें सीधे जनता से दर्शकों से जुड़ना होता है। इस कठिन कार्य जोखिम को उन्होने उठाया और निर्वाह किया।

बाद में पश्चिमी नाटकों के तर्ज पर कुछ शिल्पगत प्रयोग भी नाटकों में हुये कथ्य के स्तर पर जटिल होकर भी शिल्प एवं मंचन की दिशा में वे प्रयोगशील होकर सफल हुये। इनमें से पगला घोड़ा, इन्द्रजीत, अंतहीन, सारी रात, नाटकों की लम्बी कतार हैं। ऐसे नाटक प्रयोगवादी रंग को रेखांकित करते हैं। इन नाटकों ने पूरे भारतीय रंगमंच में अपनी सर्वथा अछूती एवं ताजा पहचान बनाई है। यद्यपि इन नाटकों का शिल्प नया है, पर इन नाटकों के भीतर जो नाटक घटित होता है, वह उधार लिया हुआ प्रतीत होता है। इस रूप में बादल, सरकार और उनके नाटक अलग ही दिखाई पड़ते हैं। वे हल्के–फुल्के मनोरंजन को त्यागकर पहली बार जीवन मूल्य, अस्तित्व और अस्मिता से जूझते नजर आते हैं। इसमें संदेह नहीं है कि उनके नाटक अपनी कथ्य की गहराई जटिलता, बहुआयामी चरित्र के कारण सहजता से सम्प्रेषित हो जाते हैं। बादल सरकार के नाट्य लेखन ने नया मुहावरा, नई प्रस्तुति शैली, नई भाषा, और नया व्याकरण दिया। हिंन्दी में भी उनके नाटकों का भरपूर मंचन हुआ। कहना यह चाहिए कि 1975 से 1985 तक भारतीय रंगमंच पर बादल सरकार और उनका तीसरा रंगमंच इस तरह अपना प्रभामण्डल बनाए हुये है कि शायद ही कोई ऐसी नाट्य संस्था होगी, जिसने उन्हें अपने साथ काम करने के लिये आमंत्रित न किया हो। यही वह दौर है, जिसमें उन्होंने जुलूस, शैया, धेरा और भारत का नया इतिहास से नाटकों की रचना की, जिसके माध्यम से उन्होनें रंगमंच को शब्द से अधिक ध्वनि को भाषा देने की कोशिश की। बनी बनाई अथवा गढ़ी हुई कहानी के ढाँचे को छोड़कर टुकड़ों–टुकड़ों में बाँटकर जीवन और उससे जुड़े दूसरों प्रश्नों को लेकर प्रश्न उठाने की कोशिश की और रंगमंच के तमाम बाहरी उपादानों को छोड़कर मात्र अभिनेता की वाक और शारीरिक चेष्टाओं और गतिविधियों से ही एक नई रंगभाषा तैयार करने की कोशिश की। इतना ही नहीं भारतीयता की खोज के नाम पर अर्न्तराष्ट्रीय

बाजार में भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। परिणाम यह हुआ कि भारतीय रंगमंच पर आयातित यथार्थवाद को छोड़कर खालिस लोक रंगमंच को तथा देशी रंग को स्थापित करने का प्रयास शुरू हुआ। साथ ही रंगमंच को नये अर्थ शास्त्र की वास्तविकता का सामना करते हुये कम साधनों से रंगकर्म करने पर जोर देते हुये अभिनेता की वाणी और शरीर के तत्वों से विम्बगत चाक्षुण्य और नाटकीय संभावनाओं को अभिव्यक्ति देते हैं। कुछ और नए प्रयोग भी हुये हैं और होते जा रहे हैं। मुक्तिबोध की लम्बी कविता अंधेरे में पर अधारित विजय सोनी प्रस्तुति ने अच्छा प्रभाव डाला और नई संभावनाओं को जन्म दिया है। लखनऊ में गिरीश कर्नाड के नाटक, तुगलक और खड़िया का घेरा वेस्ट की शशांक बहुगुणा द्वारा निर्देशित प्रस्तुतियों ने भी अच्छा प्रभाव डाला था। बादल सरकार के नाटक आज भी रंगमंचीय प्रस्तुतियों में आकर्षित करते हैं। अपनी तमाम कुण्ठा, निराशा और अर्थहीनता के बावजूद अंत में वे कहीं आशा की किरण देते है, भारतीय दृष्टि देते हैं। श्यामानंद जालान की प्रस्तुतियॉ भी नया कुछ सोचने और कहने को विवश करती हैं– शुतुरमुर्ग एवं इन्द्रजीत प्रसिद्ध प्रस्तुतियॉ हैं। श्यामानन्द जालान के अतिरिक्त सत्यदेव दुबे और सत्यब्रत सिन्हा की प्रस्तुतियॉ भी सराही गई हैं।

वर्तमान समय में बालरंगमंच का एक अभाव सा है, वास्तव में जो आज जो अंकुरित है वही कल का विशाल छायादार वृक्ष है। अंकुर यदि रोग ग्रस्त हुआ तो भावी फलदार वृक्ष की कल्पना असंभव है। यही बात बच्चों के साथ भी लागू होती है। निरंतर की गई उपेक्षा से अनेक समुन्नत भावी व्यक्तित्व की कल्पना करना असंभव है। बच्चों के शैक्षिक उद्देश्य की पूर्ति केवल पुस्तकों के माध्यम से ही हो सकती है। ऐसी धारणा भ्रमपूर्ण है क्योंकि पुस्तकों के माध्यम से अक्षर ज्ञान और लिखने पढ़ने का अभ्यास तो बढ़ता है पर अभिभावकों की आकांक्षाओं के अनुरूप उनमें भावी व्यक्तित्व के सर्वागींण विकास के अनेक गुणों का अभाव रहता है। उन अभावों को दूर करने का एक ही सशक्त माध्यम है बाल रंगमंच है। बाल रंगमंच का ध्येय यह नहीं है कि उसके माध्यम से हर बच्चा केवल अभिनेता या अभिनेत्री बनें, उसका माध्यम तो बच्चों में शब्द–शक्ति को उर्जस्वित कर उनके अंग संचालन को इच्छा–शक्ति से नियंत्रित करने की युक्ति बताना है। वह योगासनों तथा विभिन्न प्रकार के खेलों से उनकी बाह्य तथा आन्तरिक स्नायु–ग्रंथियों को पुष्ट करने के साथ ही उनकी धारणा शक्ति को बलवान बनाता है। घर, स्कूल में आचरण नैतिकता एवं व्यवहार के जो सैद्वांतिक तथ्य मौखिक रूप से बच्चों को पढ़ाये सिखाये जाते हैं, यदि वही मंच पर हू–बहू दिखाये जाये तो उसका सीधा असर बच्चों के मस्तिष्क पर पड़ता है। उनकी सृजनात्मकता तो बढ़ती ही है साथ ही तमाम बुराइयों को त्यागकर प्रेम, सच्चाई, साहस, त्याग एवं सद्भावना की की ओर भी वे अग्रसर होते हैं। वे ज्ञान–विज्ञान की नई व कठिन से कठिन बातें सरलता से सीख सकते हैं। बाल रंगमंच बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य व मनोरंजन का एक सशक्त माध्यम है पर आश्चर्य है कि वर्तमान समय में इसका अभाव है।

देखा जाये तो द्वितीय महायुद्ध से पूर्व भारत में बाल रंगमंच की कोई पुष्टि परम्परा नही थी। बीसवीं सदी के दूसरे दशक से बालकों के अभिनय क्षेत्र में कुछ व्यावसायिक संस्थाओं द्वारा प्रेरणा मिली। बच्चों के लिये स्वतंत्रता पूर्वक लिखे गये नाटकों को मंच पर लाने की प्रथा गत 9–10 दशकों की है। सामान्य रूप से अभिभावक बच्चों को बाल रंगमंच से दूर रखते हैं, जिससे आज भी भारत के शहरों, महानगरों को छोड़कर स्थिति दयनीय है। आंध्रप्रदेश में बाल रंगमंच का सूत्रपात 1920 से हुआ था। आंध्र के बाल रंगमंच का इतिहास बालगीति से शुरू होकर नृत्य अभिनय और वर्तमान आधुनिक विकसित स्वरूप तक पहुँचा। 1920–30 के मध्य गुण्टूर शहर की बाल संस्था बाल मित्र सभा ने कई नाटक खेले जिनमें छोटे बच्चों से अभिनय कराया गया। चित्तूर की रामविलास सभा ने भी अपने पौराणिक–धार्मिक नाटकों में बाल कलाकारों को अभिनय करने का अवसर प्रदान किया। पर वहाँ की संस्थाओं द्वारा बच्चों के अभिनय के पीछे बाल रंगमंच की कोई परिकल्पना नहीं थी। इससे अपरोक्ष रूप से बाल रंगमंच का बीजारोपण आन्ध्रप्रदेश में अवश्य हुआ। 1939 में मद्रास रेडियो ने बच्चों के लिये कार्यक्रम प्रसारित करना शुरू किया इसमें बच्चों के नाटक तथा गीत हुआ करते थे। इस प्रकार यहाँ अनेक संस्थाओं के माध्यम से बाल रंगमंच की दिशा में आंध्रप्रदेश के प्रयास सराहनीय रहे। महाराष्ट्र में भी 1913–14 में बाल रंगमंच का बीजारोपण बासुदेव गोविन्द आपटे की पुस्तक नाट्य भरत और नाट्य रामायण से ही हो गया था। उनमें रामायण के विभिन्न प्रसंगों पर रोचक

संवाद लिखे गये। समयानुसार ऐसे भी नाटकों का सृजन किया गया जिसमें लड़के–लड़कियाँ एक साथ अभिनय कर सकें। बाल रंगमंच की इस नवीनता को भी समाज ने स्वीकार किया और बाल रंगमंच नई सज–धज के साथ समृद्ध की ओर अग्रसर होने लगा। महाराष्ट्र सरकार के बाल नाट्य महोत्सव के आयोजन से बाल रंगमंच ने वहाँ पर अपना स्वतंत्र प्रभुत्व बनाया। दिल्ली भी बाल रंगमंच की दृष्टि से संसाधनों, उपकरणों व वित्तीय साधनों से उन्नत रही, 1954 में दिल्ली चिल्ड्रेन्स थियेटर की स्थापना सर्जनात्मक नाट्य के प्रयोगशील दल के रूप में की गई थी, जिसमें सात से बारह वर्ष की उम्र के बच्चे थे। दिल्ली चिल्ड्रेन्स थियेटर ने 30 हजार के लगभग बाल रंगकर्मियों को प्रशिक्षित किया। 1978 में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के तत्कालीन निर्देशक कारन्ध ने बाल रंगमंच के उन्नयन हेतु सक्रिय प्रयास किये थे, इसके अतिरिक्त दिल्ली की गैर सरकारी संस्थायें भी बाल रंगमंच के प्रति सजग रहीं। बाल भवन, नाट्य संभाग, उमंग, तमाशा, क्रियेटिव चिल्ड्रेन्स थियेटर, सूत्रधार, पपेट थियेटर आदि संस्थाओं का सक्रिय योगदान रहा। उत्तर प्रदेश में भी बाल रंगमंच के रूप में स्कूल–कॉलेजों के उत्सवों पर स्कूली बच्चों द्वारा नाटक खेले जाने की परम्परा रही है। वहाँ के लखनऊ, इलाहाबाद, वाराणसी, गोरखपुर आदि नगरों में नाट्य–संस्थाओं द्वारा छिटपुट बच्चों के नाटक खेले जाते रहे। इस दिशा में सन् 1975 में उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी ने पाँच दिवसीय बाल रंगमंच प्रशिक्षण शिविर लगाया जिसका निर्देशन लब्ध–प्रतिष्ठत बाल–रंगमंच विशेषज्ञ श्री प्राग जी डोसा ने किया। इसमें लखनऊ के आस–पास के लोगों ने प्रशिक्षण प्राप्त किया। उत्तर प्रदेश के बाल रंगमंच को विकसित करने की दिशा में बाल रंगमंच नामक पत्रिका का लखनऊ से प्रकाशन एक अच्छा प्रयास रहा है। कृष्णनारायण कक्कड़ की लिखी हुई पुस्तक बाल रंगमंच पर आयोजित संगोष्ठी की महत्वपूर्ण सामग्री का संचयन किया है। उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी के प्रयासों के अतिरिक्त, लखनऊ की बाल विद्या मंदिर, दयानंद शिशु मंदिर, सिटी मान्टेसरी स्कूल, नन्ही दुनिया, द थियेटर ग्रुप, गोरखपुर की समानान्तर तथा इलाहाबाद, वाराणसी, सुल्तानपुर, आगरा आदि जनपदों की नाट्य संस्थायें भी बच्चों के रंगान्दोलन में संलग्न रहकर बाल रंगमंच के विकास की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया। अन्य प्रांतो की तरह बंगाल में भी बाल रंगमंच की संस्थायें सक्रिय रही है। रवीन्द्र भवन में प्रतिवर्ष जनवरी में शिशु उत्सव मनाया जाता है जिससे बच्चों के नाटक, नृत्य तथा अन्य सांस्कृतिक कार्यक्रम किये जाते हैं। कलकत्ता की बाल–रंगमंच की अनेक संस्थायें इस दिशा में सक्रिय हैं। पर इनमें सबसे उल्लेखनीय नाम रहा है–चिल्ड्रेन्स लिटिल थियेटर। म.प्र. भी बाल–रंगमंच की दृष्टि से समृद्ध है पर यहाँ भी अन्य प्रान्तों की तरह उतना समृद्ध नही हुआ, जितना होना चाहिये। फिर भी इस दिशा में किये गये प्रयास सराहनीय रहे हैं।

बच्चों का रंगमंच

जब मैं विद्यालयों या बस्तियों में नाटक की कार्यशाला करने जाती हूँ, तो उसमें बच्चे बहुत ही उत्साह से शामिल होने आते हैं। जब उन सबसे परिचय लेने की बारी आती है, तो अधिकांश में थोड़ी झिझक होती है। अपने बारे में वे बहुत धीमी आवाज में कुछ बताने का प्रयास करते हैं। उन्हें इस प्रकार के आयोजन में कुछ नवीनता लगती है। धीरे–धीरे बच्चे इतने खुल जाते हैं कि कार्यशाला शोरगुल और धमाचौकड़ी में बदल जाती है। हमारा पहला उद्देश्य सफल हो जाता है कि सारे बच्चे आपस में खूब घुलमिल जाएँ, अभी मैं नाटक की बात नहीं करूँगी, मैं बच्चों के इस नए माहौल की बात करना चाहूँगी।

मैंने देखा कि जो अन्तर्मुखी बच्चे थे, जो संकोची प्रवृत्ति के थे, उनमें सामूहिकता का बोध पैदा हुआ और वे सब जब खाने बैठते थे, तो एक गोल घेरे में। सभी एक– दूसरे के डिब्बे में से खा रहे हैं, एक दूसरे का ख्याल रख रहे हैं। कुछ बहुत शरारती या शैतान किस्म के बच्चे थे, जो अक्सर दूसरे साथियों के साथ मारपीट करते थे, उनके स्वभाव में अपने साथियों के लिए प्यार पैदा हो गया है। इस तरह सारे प्रतिभागी बच्चों में दोस्ती स्थापित हो गई थी। रंगमंच, समूह की एक कला है। यह हममें सामाजिकता का एक एहसास भरता है, एक–दूसरे में सुख–दुःख को साझा करने का भाव जगाता है।

अगले दिन से, सब बच्चों का परिचय होने के बाद हमने उनके साथ खेल खेलना शुरू किया। अब वहाँ बच्चे आजाद गगन में उड़ते हुए पँछी थे, जो चहचहा रहे थे और उड़ रहे थे। रंगमंचीय गतिविधियों के प्रशिक्षण कार्यक्रम में खेलों को हम तीन–चार वर्गों में बाँट सकते हैं। पहला, शारीरिक व्यायाम या मनोरंजक खेल। दूसरा, एकाग्रता स्मरण शक्ति या बौद्धिक क्षमता बढ़ाने वाले खेल। तीसरा, भाषा के खेल (तत्काल बोलना और लिखना) और चौथा, अभिनय के खेल इत्यादि। नाटक की कक्षा की शुरुआत हमेशा खेलों के साथ की जाए, जिससे शारीरिक, मानसिक जड़ता टूटे और हमारा शरीर एक गतिशीलता व चेतनता में आ जाए। इसके बाद बच्चों को अपने मन से कुछ भी दृश्य प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित करें। आप उन्हें दृश्यों की थोड़ी–सी जानकारी दे सकते हैं, जैसे घर का, बाजार का, विद्यालय का या जंगल का कोई दृश्य...। किन्तु उसके बारे में ज्यादा कुछ न बताया जाए, ताकि बच्चे अपनी कल्पना से उस दृश्य का निर्माण कर सकें। उनकी अबोधता ही उनकी मौलिकता है और वह सिर्फ बच्चे ही प्रकट कर सकते हैं, हम वयस्क नहीं। आप देखेंगे कि बमुश्किल 10–15 मिनट की तैयारी में वे कुछ दृश्य बना लेते हैं (ऐसा करवाते समय बच्चों को छोटे–छोटे समूहों में बाँट दें, तो सभी को बराबर कुछ कर दिखाने का मौका मिलेगा)। वे बड़े उत्साह के साथ बारी–बारी से अपनी प्रस्तुतियाँ देते हैं। जब आप ये प्रस्तुतियाँ देखें, तो बीच में बच्चों को बिल्कुल भी टोकें नहीं, वे जैसा भी प्रस्तुत कर रहे हैं, करने दीजिए।

उन्हें देखते समय आपके मन में जो भी प्रतिक्रियाएँ आती हैं उन्हें लिख जरूर लें। पूरे आशु अभिनय देख लेने के बाद सबका उत्साहवर्धन करें। इस प्रकार की तत्काल अभिनय की प्रक्रिया को कुछ दिन लगातार करें। आप यह पाएँगे कि अभी आपने नाटक का 'अ' 'आ' 'इ' भी नहीं सिखाया, लेकिन बच्चे पूरे उत्साह और रुचि के साथ अभिनय कर रहे हैं, नाच–गा रहे हैं।

हर बच्चा नैसर्गिक रूप से क्षमतावान होता है। यहाँ इस बात पर विचार–विभेद कर सकते हैं कि बच्चे जन्मजात कलाकार होते हैं। हम पाते हैं कि कुछ बच्चे इस प्रक्रिया को देखने के बाद भी इस ओर आकृष्ट नहीं होते या उनकी रुचि नहीं होती। हमें यह जान लेना चाहिए कि हर बच्चा क्षमतावान है, प्रतिभाशाली है। बच्चों के सन्दर्भ में प्रतिभाशाली होने का अर्थ है कि वह ज्ञान की सतत खोज में है किन्तु उसकी भी एक नैसर्गिक अभिरुचि है। कोई खेल में, कोई मशीनों, औजारों के साथ खेलने में, कोई गाने में, नाचने में... रुचि ले रहा है, यह रूचि ही उसको प्रतिभाशाली बनाती है। हमें बच्चों की नैसर्गिक वृत्ति को खोजना है न कि सबको एक हथौड़े से ठोकपीट कर अपने मनमाफिक बनाना है।

यह प्रक्रिया बहुत धैर्य की माँग करती है। इस प्रक्रिया की जिम्मेदारी सिर्फ कलात्मक गतिविधियाँ करने वालों की ही नहीं है, हर शिक्षक, हर माता–पिता की भी है। आइए, रंगमंच की कक्षा में लौटते हैं। लगातार कुछ दिनों के सुधार को देखने के बाद आप पाएँगे कि बच्चों ने बिना किन्हीं संवादों को याद किए, बिना किसी निर्देशक के संवाद बोलने का अभिनय किया। बच्चों में अनुकरण की क्षमता और कौशल बहुत होता है। उसी के बल पर वे आपको भी अचम्भे में डाल देते हैं। अब आप उनके साथ उनकी प्रस्तुतियों पर मित्रतापूर्वक चर्चा कर सकते हैं। क्योंकि अब वे कुछ और बेहतर, कुछ और नया करना चाहते हैं। आपके लगातार प्रोत्साहन से आपने उनका विश्वास भी जीत लिया है तो वे खुले दिल से उनको स्वीकारेंगे। चूँकि बच्चों के साथ किसी भी कला–प्रक्रिया को करते समय कोई भी बन्धन, अनुशासन या नियम वर्जित माना जाता है। उनकी सहज विकासशील प्रक्रिया में अब आप उनके शिक्षक या उपदेशक नहीं हैं, उनके मित्र हो गए हैं, तो कुछ बेसिक बुनियादी बातें उन्हें बता सकते हैं। मसलन दर्शकों की तरफ बच्चों के चेहरे या आवाज का हिस्सा हो ताकि आपका अभिनय या संवाद छुपे नहीं। संवादों को सारे दर्शक सुन सकें, वगैरह। किन्तु इसमें और ज्यादा कुछ न जोड़ें। नाटक एक दृश्य काव्य है। दर्शक को जो आप दिखाना चाहते हैं और जो सुनाना चाहते हैं वह दर्शकों तक ठीक–ठीक पहुँचे। फिर ये जरूरी नहीं कि किसी खास जगह से ही ये अभिनय हों। बच्चों के साथ नियमित रूप से गाना बजाना करें। जिससे उनमें सुनने की और गाने की प्रवृत्ति विकसित हो। उन्हें ताल का भी ज्ञान हो। फिर धीरे–धीरे आप उनसे ही किसी विषय पर बातचीत करके नाटक

लिखवा सकते हैं। लिखवाने की बात इसलिए कर रहा हूँ क्योंकि उस नाटक में उनकी कल्पना उनके अनुभव, विचार या स्वयं वे प्रकट होंगे।

आप उनकी मदद हर जगह कर सकते हैं। इस पूरी प्रक्रिया में सबसे बड़ी बात है संवेदनशीलता। हमें बच्चों के प्रति संवेदनशील रहकर, उनकी आन्तरिक खूबियों को बाहर लाना है। कोई बच्चा स्वयं को अक्षम पाता है, तो भी आपकी प्रेरणा से उसे हिम्मत और आत्मविश्वास पैदा होना चाहिए। जन्मजात कला न भी हो तो भी क्षमता तो जन्मजात है ही, उसी को हमे प्रेरित करना है।

बच्चों द्वारा तैयार नाटक के पोस्टर, गीत, संगीत, वेशभूषा, रूपसज्जा सब कुछ उनके द्वारा ही सर्जित हों। ऐसी नाट्य प्रस्तुति का आयोजन आप विद्यालय या किसी भी चौपाल, बगीचा या अन्य जगह करें। रंगमंच सारी कलाओं का समावेश है। वह बच्चों के विकास में अहम् भूमिका निभाता है। उससे बच्चों के व्यक्तित्व में क्या–क्या परिवर्तन आते हैं, मैं उन्हें नहीं बताऊँगा आप (शिक्षक, अभिभावक) उन्हें दर्ज कीजिए। बच्चों के मनोविज्ञान का अवलोकन करते हुए, उनमें आए कुछ बेहतर बदलावों को महसूस कीजिए, उन्हें लिखिए और उसे अपने अध्याय के रूप में शामिल कर लीजिए।

शिक्षा और मनोरंजन के अनुभव के रूप में बच्चों का रंगमंच

इस दावे के बारे में एक लंबी बहस हुई है कि बच्चे खेल के माध्यम से सीखते हैं, और कई विद्वानों ने इसमें व्यापक योगदान दिया है । इन विद्वानों का निष्कर्ष है कि बच्चे मनोरंजन के द्वारा अधिक सीखते हैं। स्कूलों के अलावा रंगमंच एक और माध्यम हो सकता है जिसके माध्यम से बच्चे नैतिक रूप से विकसित हो सकते हैं। रंगमंच बच्चों को संगीत की तरह सीखने के लिए प्रेरित कर सकता है;

"बचपन में सीखा गया संगीत सामाजिक प्रथाओं को सीखने का आधार है" । ऐसा इसलिए है क्योंकि बच्चे आमतौर पर अपना पूरा ध्यान हर उस चीज पर देते हैं जो उनका मनोरंजन करती है। रंगमंच एक प्रेरक के रूप में काम कर सकता है और बच्चों को पढ़ाने, निर्देश देने और सूचना प्रसारित करने का दूसरा माध्यम बन सकता है। रंगमंच उन्हें नैतिकता सिखा सकता है और उनके व्यवहार पैटर्न को आकार दे सकता है और उनका मनोरंजन भी कर सकता है। इसलिए, यदि हम केवल सौंदर्यशास्त्र के अनुभव पर ध्यान केंद्रित करते हैं, और यदि हम बच्चों के रंगमंच में शैक्षिक क्षमता का एहसास करने में विफल रहते हैं, तो "हम उन समृद्ध अवसरों की अनदेखी कर सकते हैं जो खेल बच्चों को विकल्प चुनने, नए कौशल विकसित करने, समस्याओं को हल करने और समझने के लिए प्रदान करते हैं। जिस दुनिया में वे रहते हैं" । हालांकि, शोनमैन का तर्क है कि बच्चों के रंगमंच को "शैक्षिक प्रयास के रूप में अपनी वैधता को परिभाषित करने के लिए संघर्ष करना बंद करना होगा"।

यह बच्चों के रंगमंच को एक शैक्षिक प्रयास के रूप में वैध बनाने के बारे में नहीं है बल्कि यह इस तथ्य को स्वीकार करने के बारे में है कि रंगमंच नैतिक विकास का माध्यम हो सकता है। यद्यपि एक थिएटर केवल मनोरंजन के अनुभव के लिए बनाया जा सकता है, बच्चे जीवन के बारे में नई चीजें सीखने में सक्षम हो सकते हैं क्योंकि वे अक्सर जो कुछ भी करते हैं या देखते हैं उसमें लीन हो जाते हैं। इस पत्र में बच्चों के रंगमंच को तीन श्रेणियों में विभाजित करने का प्रस्ताव हैय सौंदर्य अनुभव और मनोरंजन के रूप में बच्चों का रंगमंच, शिक्षा या सीखने के रूप में बच्चों का रंगमंच, और बच्चों का रंगमंच दोनों के रूप में। इस पेपर में अंतिम श्रेणी विकसित की जाएगी। दर्शकों की जरूरतों और इच्छाओं को ध्यान में रखते हुए बच्चों का रंगमंच एक ही समय में शैक्षिक (नैतिक शिक्षा) और मनोरंजक (मजेदार) हो सकता है। यहां शिक्षा को औपचारिक कक्षा शिक्षण के साथ भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए। बल्कि, यह अनौपचारिक शिक्षा से संबंधित है जहां नैतिकता – अच्छे और बुरे चरित्र और व्यवहार के मानक – मनोरंजन के माध्यम से सिखाए जाते हैं। ट्वेन का मानना है कि ष्बच्चों का रंगमंच नैतिकता और आचरण और उच्च

आदर्शों का एकमात्र शिक्षक है जो कभी भी छात्र को परेशान नहीं करता है, लेकिन पाठ समाप्त होने पर हमेशा उसे खेद करता है६ । जिस संदर्भ में बच्चों का रंगमंच आधारित है, वह बच्चों को कक्षा की तुलना में तेजी से सीखने का अवसर प्रदान कर सकता है। ट्वेन आगे बच्चों के रंगमंच में इसके महत्व पर चर्चा करते हैंरू

यह नैतिकता का सबसे प्रभावी शिक्षक और अच्छे आचरण का प्रवर्तक है जिसे मनुष्य की सरलता ने अभी तक तैयार किया है, इस कारण से कि इसके पाठ पुस्तक और नीरस घरेलू द्वारा नहीं, बल्कि दृश्य और उत्साहजनक कार्य द्वारा पढ़ाए जाते हैंय और वे सीधे हृदय में उतर जाते हैं, जो उनके लिथे सबसे सही जगह है। अच्छी नैतिकता अक्सर बुद्धि से आगे नहीं जाती है, अगर वे अपने वर्णक्रमीय और छायादार तीर्थयात्रा पर भी इतनी दूर पहुंच जाते हैंरू लेकिन जब वे बाल रंगमंच से यात्रा करते हैं तो वे आधे रास्ते पर स्थायी रूप से नहीं रुकते हैं, लेकिन घर जाते हैं ।

बच्चों के रंगमंच में नैतिकता पुस्तक में सीखी गई नैतिकता से अधिक प्रभावी हो सकती है। उदाहरण के लिए, बच्चों के रंगमंच में नैतिक यह हो सकता है कि एक दूसरे के साथ ईमानदार रहना हमेशा अच्छा होता है। बच्चों को इससे सीखने में सक्षम होने के लिए प्रदर्शन से जुड़ने में सक्षम होना चाहिए, इसलिए मनोरंजन मूल्य की आवश्यकता है। नैतिकता को सम्मेलनों में एम्बेड करके मनोरंजन के संदर्भ में सिखाया जा सकता है। इसलिए, कुछ सम्मेलन, जो बच्चों का ध्यान आकर्षित करने के लिए महत्वपूर्ण हैं और जो बच्चों के रंगमंच के लिए आवश्यक हैं क्योंकि मनोरंजन और शिक्षा दोनों या 21 वीं सदी में नियोजित किया जाना चाहिए। कुछ सम्मेलनों पर संक्षेप में चर्चा की जाएगी। उन्हें थिएटर के टुकड़े में एम्बेड किया जा सकता है चाहे वे कहानी का हिस्सा हों या नहीं। हालांकि कुछ अभ्यासी अपने कारणों से उन सभी को शामिल कर सकते हैं या नहीं भी कर सकते हैं। वे महत्वपूर्ण हैं और बच्चों के दर्शकों के साथ या उनके लिए प्रदर्शन करने वाले वयस्कों द्वारा अध्ययन और महारत हासिल की जानी चाहिए। इन सम्मेलनों में से एक 'अचानक' है। वे कोई भी क्रिया या भाषण हैं, जो बच्चों का ध्यान आकर्षित करने में मदद करते हैं।

इसमें मंच पर एक चरित्र के अजीब और अप्रत्याशित प्रवेश शामिल हो सकते हैं। बच्चों की रुचि को बनाए रखने और उन्हें केंद्रित रखने के लिए अचानक अचानक आना महत्वपूर्ण है और महत्वपूर्ण है। अचानक परिवर्तन लगातार हो सकते हैं ताकि बच्चों के पास हमेशा ध्यान केंद्रित करने के लिए कुछ न कुछ हो। बच्चों के थिएटर में अचानक होने वाली घटनाओं की कोई सीमा नहीं है और वे टुकड़े के भीतर कहीं भी हो सकते हैं। एक बार जब बच्चों का ध्यान आकर्षित किया जाता है, तो नैतिक पाठ पढ़ाया जा सकता है। इसके अलावा, नैतिकता अचानक का हिस्सा हो सकती है। अचानक, बच्चों के रंगमंच के अन्य तत्वों की तरह, कथा का हिस्सा होना चाहिए क्योंकि वे दर्शकों को शामिल कर सकते हैं। बच्चों के रंगमंच का एक साजिश टुकड़ा बनाने के लिए कथन या कहानी भी महत्वपूर्ण है, और नैतिक पाठ इसका हिस्सा हो सकता है। एक अच्छी कहानी एक खराब प्रदर्शन बन सकती है यदि उसे कहने या सुनाने की प्रक्रिया ठीक से और सावधानी से नियोजित और की गई नहीं है। वर्णन में एक शैली और तकनीकों का एक सेट शामिल है जिसके माध्यम से बच्चों को प्रदर्शन से अवगत कराया जाता है। इसमें कथात्मक दृष्टिकोण या कथाकारों का दृष्टिकोण, प्रस्तुतिकरण प्रारूप और कहानी की समय सीमा जिसमें कहानी सेट की गई है, शामिल हो सकती है। वर्णन में न केवल दृश्य और अदृश्य पात्र शामिल होते हैं – जो कहानी बताते हैं बल्कि यह भी बताते हैं कि कहानी कैसे सुनाई या सुनाई जाती है। इसलिए, जो कोई कहानी की प्राप्ति में शामिल है, वह नाटककार और निर्देशकों सहित एक कथाकार है। कहानी कहानी के कथानक को आगे बढ़ाती है। बच्चों के रंगमंच में, सरल संरचनाओं वाले भूखंड प्रभावी और पालन करने में आसान हो सकते हैं। इसके अलावा, थोड़ी अतिरिक्त मदद जैसे कि अतिरिक्त विवरण देना बच्चों के रंगमंच में महत्वपूर्ण है। हालांकि बच्चे एक जटिल कहानी का पालन करने में सक्षम हो सकते हैं, लेकिन इससे बचने से श्चौथी दीवारश को तोड़ने में मदद मिल सकती है। संक्षेप में, किसी प्रदर्शन का स्वागत आंशिक रूप से इस बात पर निर्भर करेगा कि कहानी कैसे सुनाई जाती है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष यह है कि नाटक और बाल रंगमंच साहित्य के अभिन्न अंग हैं। पिछले तीन चार दशकों में भारत की विभिन्न भाषाओं में साहित्य के स्तर पर जो आदान–प्रदान हुआ है, वह अपने आप में बेजोड़ है, इस लेन–देन से रंगमंचीय कला का विकास हुआ हैं। इस प्रक्रिया में रंगमंच सबसे अधिक सक्रिय रहा है। महानगरों,कस्बों, शहरों में 21वीं सदी के वर्तमान समय में रंगमंचीय कला में अपनी एक अलग पहचान बना ली है, सिनेमा और टेलीवीजन में जो प्रयोग हुये हैं वे भी इसकी गत्यात्मकता के प्रमाण हैं । वर्तमान समय के भारत में बाल–रंगमंच और बाल फिल्मों का अभाव है जिसके विकास की आवश्यकता है, बाल रंगमंच राष्ट्रीय प्रगति का महत्वपूर्ण अंग है। भारत के सभी शहरों, महानगरों, कस्बों में इसकी स्थापना होना आवश्यक है। बाल–रंगमंच को और भी अधिक समृद्ध करने के लिये शिक्षक, अभिभावक, साहित्यकार, निर्देशक, पत्रकार, सम्पादक सभी लोगों को मिलकर प्रयास करने होंगे। पाठ्यक्रम में बाल–रंगमंच के विषय को जोड़ा जाना आवश्यक है। स्वामी परमहंस जी के इस कथन को नही भूलना चाहिये कि–हजार व्याख्यान जिस कार्य को नही कर सकते उसे एक नाटक कर सकता है। अतः विश्वविद्यालय स्तर पर ही नही बच्चों को आरंभिक शिक्षा से ही रंगमंच से जोड़ा जाये और बचपन की आरंभिक सीढ़ियों से ही उनकी नाटकीय वृत्तियों और बाल स्वभाव का पूरा–पूरा उपयोग करके विकास के अवसर दिये जायें।

संदर्भ

1. नेमीचन्द्र जैन – भारतीय रंगमंच की परंपरा, दिनमान, प्रदेश संगीत नाटक अकादमी ने पांच दिवसीय बाल रंगमंच 13 जुलाई 1988, पृष्ठ
2. हिन्दुस्तानी पत्रिकाए जुलाई अंक 1936ए जयशंकर प्रसाद लखनऊ के आस.पास के लोगों ने प्रशिक्षण प्राप्त किया। और रंगमंचए पृष्ठ.10ए12|
3. हि ंदी बाल साहित्य की रुपरेखा – श्रीपाद लोकभारती प्रइलाहबाद पृ. 88
4. हि ंदी बाल साहित्य की रुपरेखा – श्रीपाद लोकभारती प्र.इलाहबाद पृ. 94
5. मैगुइरे, टी एंड शुइटेमा, के। (2012)। युवा दर्शकों के लिए रंगमंचरू एक महत्वपूर्ण पुस्तिका।
6. शोनमैन, एस। (2006)। बच्चों और युवाओं के लिए एक माध्यम के रूप में रंगमंच: चित्र और अवलोकन।
7. बालरंग (बच्चों का रंगमंचःसिद्धान्त और व्यवहार)–रेखाजैन–राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–प्रथम संस्करण–2006
8. हिन्दी नाटक : नई परख–रमेश गौतम– स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली–प्रथम संस्करण–2010